न्यायालय–सत्र न्यायाधीश, जांजगीर–चांपा (छ0ग0)

CNR NO.CGJC010008812017

दांडिक एम0जे0सी0क0–03/2017

संस्थित दिनांक 22/05/2017

सत्र न्यायाधीश, जांजगीर–चांपा ,
जिला–जांजगीर–चापां(छ0ग0) ..... परिवादी

बनाम

1– श्री गणेश शर्मा, अधिवक्ता,
जिला एवं सत्र न्यायालय
जांजगीर–चांपा(छ0ग0)
निवासी–चंदनिया पारा, जांजगीर
थाना एवं तहसील–जांजगीर,
जिला–जांजगीर–चांपा (छ0ग0)

2– सौरभ पाठक उम्र 33 वर्ष आ0
सुभाष चन्द्र पाठक निवासी–शिवरीनारायण
थाना–शिवरीनारायण, जिला–जांजगीर–चांपा
(छ0ग0) ——— अनावेदकगण

———————————————————————

न्यायालय अवमानना अधिनियम, 1971 की धारा–12 सहपठित धारा–15(2) के तहत कार्यवाही के आदेश पत्र दिनांक 22/05/2017 की प्रतिलिपि।

———————————————————————

आज दिनांक 22/05/2017 को चायकाल के समय लगभग 02.25 बजे जब मैं अपने विश्राम कक्ष में था, उस समय न्यायालय में पदस्थ भृत्य श्री हेमन कश्यप ने अधिवक्ता श्री गणेश

शर्मा द्वारा आपराधिक अपील प्रकरण क्रमांक–10/2017 **''श्रीमती प्रभा उपाध्याय बनाम सौरभ पाठक''** में द0प्र0सं0 की धारा–408(1) के तहत प्रस्तुत किये गये एक आवेदन को मेरे समक्ष लाकर प्रस्तुत किया, जिसे पढने के बाद मैं तुरन्त न्याय–आसन पर पहुॅचा, लेकिन उस समय अधिवक्ता श्री गणेश शर्मा चले गये थे।

न्यायालय में पदस्थ भृत्य हेमन कश्यप से पूछताछ करने पर बताया कि अधिवक्ता श्री गणेश शर्मा ने व्यक्त किया है कि वे 04.00 बजे आएंगे। तब मेरे द्वारा अधिवक्ता श्री गणेश शर्मा की प्रतीक्षा शाम 04.00 बजे तक की गयी। वे जब नहीं आये तब उनके द्वारा प्रस्तुत आवेदनपत्र अंतर्गत धारा–408(1) द0प्र0सं0 कर अवलोकन कर एवं अपीलार्थिनी श्रीमती प्रभा उपाध्याय के अधिवक्ता श्री अनुप मजुमदार को बुलाकर तत्काल आपराधिक अपील का अन्तरण एफ0टी0सी0 के पीठासीन अधिकारी श्री संतोष आदित्य के न्यायालय में किये जाने का आदेश पारित किया गया।

आपराधिक अपील प्रकरण क्रमांक–10/2017 के माध्यम से विचारण न्यायालय द्वारा परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 की धारा–138 के तहत की गयी दोषसिद्धि को चुनौती दी गयी है। इस अपील प्रकरण में दिनांक 19/05/2017 को अंतिम तर्क सुना गया था और प्रकरण को दिनांक 23/05/2017 को अर्थात कल निर्णय हेतु नियत किया गया था।

अधिवक्ता श्री गणेश शर्मा ने द0प्र0सं0 की धारा–408(1) के तहत जो आवेदन प्रस्तुत किये हैं, वह आपराधिक अपील प्रकरण क्रमांक–10/2017 के उत्तरवादी/परिवादी (**जिसे आगे इस आदेश में परिवादी के रूप में सम्बोधित किया जावेगा**) सौरभ पाठक के हस्ताक्षर से प्रस्तुत किया गया है, जिसके समर्थन में परिवादी सौरभ पाठक द्वारा शपथपत्र भी प्रस्तुत किया

गया है, जिसमें अधिवक्ता श्री गणेश शर्मा के हस्ताक्षर हैं और हस्ताक्षर के नीचे **''अधिवक्ता पक्ष आवेदक''** लिखा है, जिसके अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि अधिवक्ता श्री गणेश शर्मा ने ही द0प्र0सं0 की धारा–408(1) के आवेदन एवं उसके साथ परिवादी सौरभ पाठक के शपथपत्र को स्वयं अपनी लिखावट में लिखा है।

परिवादी सौरभ पाठक एवं उसके अधिवक्ता श्री गणेश शर्मा ने द0प्र0सं0 की धारा–408(1) के तहत आपराधिक अपील प्रकरण क्रमांक–10/2017 को किसी अन्य न्यायालय में अन्तरण करने बाबत जो आवेदन प्रस्तुत किया है, उसकी अन्तर्वस्तु इस प्रकार है कि :–

(1) यह कि अना0 का एक दांडिक अपील क्रमांक–10/2017 प्रभादेवी बनाम सौरभ पाठक +1 अन्य पेश होकर विचाराधीन है तथा दिनांक 23/05/2017 को निर्णय हेतु नियत है।

(2) यह कि उक्त अनावेदिका, आवेदक के मित्रों से बोल रही थी, कि उसने मा0सत्र न्यायालय को मैनेज कर लिया है तथा वह दिनांक 23/05/2017 को बाईज्जत छूट रही है तथा उसके बाद वह आवेदक तथा उसके गवाहों के खिलाफ 211, 183 द0प्र0सं0 का मामला व मानहानि दायर करेगी और ऐसा अनावेदिका द्वारा पूरे विश्वास के साथ बोला जा रहा है, जिससे ऐसा लगता है कि आवेदक के साथ न्याय नहीं हो पायेगा। अनावेदिका ने प्रकरण में लेनदेन की बात भी कही है।

(3) यह कि न्यायहितार्थ मौजूदा मामले दांडिक अपील क्रमांक–10/2017 को अन्य न्यायालय में स्थानांतरित

किया जाना उचित होगा। अतः मा0 न्यायालय से प्रार्थना है कि न्यायहित में मौजूदा आवेदन स्वीकार कर अपील अन्य न्यायालय मे स्थानांतरण करने की दया हो।

स्थान जांजगीर — आवेदक हस्ताक्षर
दिनांक 22/05/2017 — सौरभ पाठक
हस्ताक्षर (गणेश शर्मा) अधिवक्ता पक्ष आवेदक
मोबाईल 9406032665

मैं वर्ष 1994 से न्यायिक अधिकारी के रूप में कार्यरत हूँ, लेकिन पिछले 23 वर्षो के मेरे न्यायिक कैरियर में ऐसा कोई अवसर भी मेरे समक्ष नही आया है। यद्यपि पक्षकारों या अधिवक्ता द्वारा मेरे 23 वर्षो के न्यायिक कैरियर में मेरे न्यायालय में लंबित प्रकरणों के स्थानान्तरण हेतु मात्र दो–तीन बार ही आवेदन प्रस्तुत किया गया है, तथापि, दो तीन बार प्रस्तुत आवेदन में भी कोई भी न्यायालय को कलंकित करने वाला आरोप अधिरोपित नहीं किया गया है। इसके अतिरिक्त मैंने विभिन्न पदस्थापनाओं के दौरान अनेक गम्भीर प्रकृति के प्रकरणों में, प्रभावशाली व्यक्तियों के एवं पूर्णतः आपराधिक प्रवृत्तियों के व्यक्तियों के जमानत आवेदन, सत्र प्रकरण एवं अन्य प्रकरण निराकृत किये हैं, लेकिन कभी भी इस प्रकार के कलंककारी आरोप अधिरोपित नही किये गये हैं।

अतः अधिवक्ता श्री गणेश शर्मा एवं उनके पक्षकार परिवादी सौरभ पाठक द्वारा प्रस्तुत उक्त अन्तरण के लिये आवेदन की अन्तर्वस्तु को पढकर मैं न केवल हतप्रभ हूँ, बल्कि किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया हूँ। अधिवक्ता श्री गणेश शर्मा द्वारा प्रस्तुत उक्त आवेदन की अन्तर्वस्तु को पढने के उपरांत मेरा किसी भी

न्यायिक कार्य के सम्पादन में रूचि नहीं हो रही है। अतः उक्त मन :स्थिति में मेरे समक्ष प्रश्न यह उत्पन्न हो रहा है किः

क्या अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के तहत किसी पक्षकार को या पक्षकार के अधिवक्ता को यह अधिकार है कि वह जिले के सबसे प्रमुख न्यायालय जिला एवं सत्र न्यायालय पर इस तरह के कलंककारी, अनर्गल, दुर्भावनापूर्ण आरोप बिना किसी आधार के अधिरोपित कर सकते हैं? जबकि यह न्यायालय प्रकरण में प्रस्तुत किये गये साक्ष्य के अनुसार सम्पूर्ण जांजगीर–चांपा जिले में विधि एवं प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत के अनुसार कार्य कर रहा है।

यह बात सही है कि किसी भी पक्षकार को या उसके अधिवक्ता को न्यायालय के किसी आदेश या कार्यवाही की उचित आलोचना (fair criticism of order or proceeding) करने का अधिकार है, लेकिन क्या अभिव्यक्ति की स्वंतत्रता को निराधार, अवांछित और गैरजिम्मेदारना रूप में न्यायिक मामलों के संबंध में न्यायालयों या न्यायाधीशों के विरूद्ध कलंकित करती हुई टिप्पणी के साथ प्रस्तुत किया जा सकता है?

इस संबंध में माननीय उच्चतम न्यायालय का न्यायदृष्टांत– **अरूंधति राय IN-RE (2002)3 एस0सी0सी0 343** में माननीय उच्चतम न्यायालय ने न्यायालय की अवमानना के एक प्रकरण में पैरा–2 में निम्नानुसार अवलोकित किया हैः–

2. No person can flout the mandate of law of respecting the courts for establishment of rule of law under the cloak of freedom of speech and expression guaranteed by the Constitution. Such a freedom is subject to reasonable restrictions imposed by any law. Where a provision, in the law, relating to contempt imposes reasonable restrictions, no citizen can take the liberty of scandalising the authority of the institution of judiciary. Freedom of speech and expression, so far as they do not contravene the statutory limits as contained in the Contempt of Courts Act, are to prevail without any hindrance. However, it must be remembered that the maintenance of dignity of courts, is one of the cardinal principles of rule of law in a democratic set-up and any criticism of the judicial institution couched in language that apparently appears to

be mere criticism but ultimately results in undermining the dignity of the courts cannot be permitted when found having crossed the limits and has to be punished....

अतः माननीय उच्चतम न्यायालय के उक्त न्यायदृष्टांत के अवलोकन उपरांत इस न्यायालय के समक्ष निम्नलिखित प्रश्न उत्पन्न होता है किः–

(1)– न्यायालय के अवमानना की कार्यवाही क्या होती है?

(2)– क्या अधिवक्ता श्री गणेश शर्मा एवं परिवादी सौरभ पाठक द्वारा आपराधिक अपील प्रकरण क्रमांक– 10/2017 के अन्तरण हेतु द0प्र0सं0 की धारा–408(1) के तहत प्रस्तुत उक्त आवेदनपत्र की अन्तर्वस्तु के आधार पर अधिवक्ता श्री गणेश शर्मा एवं उनके पक्षकार सौरभ पाठक के विरूद्ध न्यायालय अवमानना अधिनियम, 1971 की धारा–12 सहपठित धारा–15(2) के तहत न्यायालय के अवमानना की कार्यवाही प्रारंभ की जा सकती है?

:: अवधारणीय प्रश्न क्रमांक–1 पर निष्कर्ष ::

न्यायालय अवमानना अधिनियम, 1971 की धारा–2(ग) में **''आपराधिक अवमानना''** को परिभाषित किया गया है, जो इस प्रकार है कि :–

2(ग)– आपराधिक अवमानना से किसी भी ऐसी बात का (चाहे बोले गये या लिखे गये) शब्दों द्वारा, या संकेतों द्वारा दृश्य रूपकों

द्वारा या अन्यथा, प्रकाशन अथवा किसी भी अन्य ऐसे कार्य का करना अभिप्रेत है–

(1)– जो किसी न्यायालय को कलंकित करता है या जिसकी प्रवृत्ति उसे कलंकित करने की है अथवा जो उसके प्राधिकार को अवनत करता है या जिसकी प्रवृत्ति उसे अवनत करने की है, अथवा

(2)– जो किसी न्यायिक कार्यवाही के सम्यक अनुक्रम पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है या उसमे हस्तक्षेप करता है या जिसकी प्रवृत्ति उसमें हस्तक्षेप करने की है, अथवा

(3)– जो न्याय प्रशासन में किसी अन्य रीति से हस्तक्षेप करता है या जिसकी प्रवृत्ति उसमें हस्तक्षेप करने की है अथवा जो उसमें बाधा डालता है या जिसकी प्रवृत्ति उसमें बाधा डालने की है।

न्यायालय की अवमानना 02 तरीकों से की जा सकती है। **पहला–तरीका** तो न्यायाधीश या सामान्यतः न्यायालयों पर आक्रमण है और उसके विरूद्ध आलोचना करना है, जो विधि–सम्मत आलोचना की सीमा के पार की जाती है। **दूसरी–तरह** की अवमानना कारित होती है, जब न्यायालय के न्याय के अनुक्रम में हस्तक्षेप करने का प्रयास किया जाता है।

जब एक व्यक्ति का आचरण विधि प्रशासन और विधि के प्राधिकार का अनादर या अमर्यादित कर देने में आशयित होता है, तो इस आचरण में वे समस्त कृत्य शामिल होते हैं, जो न्यायालय को असम्मानजनक या अमर्यादित स्थिति में पहुंचा देते हैं या जो उसकी मर्यादा पर आक्रमण करते हैं। न्यायालय की प्रभुता के सामने खडे होते हैं या न्यायालय के प्राधिकार को चुनौती

देते हैं। यदि कोई पक्षकार या उसका अधिवक्ता किसी न्यायालय को कलंकित(scandalises) करता है या उसकी प्रवृत्ति उसे कलंकित करने (tends to scandalises) की है, अथवा जो न्यायालय के प्राधिकार को अवनत करता है या जिसकी प्रवृत्ति उसे अवनत करने की है, तो उसके विरूद्ध न्यायालय की अवमानना की कार्यवाही प्रारंभ की जा सकती है। इसके अतिरिक्त यदि कोई व्यक्ति या कोई अधिवक्ता न्यायिक कार्यवाही के सम्यक अनुक्रम में प्रतिकूल प्रभाव डालता है या उसमें हस्तक्षेप करता है या जिसकी प्रवृत्ति उसमें हस्तक्षेप करने की है, तो उस व्यक्ति या उस अधिवक्ता का कृत्य न्यायालय अवमानना अधिनियम, 1971 की धारा–2(ग) के तहत **''आपराधिक अवमानना''**की श्रेणी में आता है। अतः तदनुसार उत्तर अवधारणीय प्रश्न क्रमांक–1 पर दिया जाता है।

:: अवधारणीय प्रश्न क्रमांक–2 पर निष्कर्ष ::

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या परिवादी सौरभ पाठक एवं उसके अधिवक्ता श्री गणेश शर्मा द्वारा प्रस्तुत द0प्र0सं0 की धारा–408(1) के आवेदन में उल्लेखित तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में परिवादी सौरभ पाठक एवं अधिवक्ता श्री गणेश शर्मा के विरूद्ध न्यायालय अवमानना अधिनियम 1971 की धारा–12 सहपठित धारा–15(2)के तहत कार्यवाही की जा सकती है?

उक्त प्रश्न का उत्तर माननीय उच्चतम न्यायालय ने न्यायदृष्टांत– **जसवंत सिंह बनाम वीरेन्द्र सिंह ए0आई0आर0 1995(एस0सी0)पेज– 520 के पैरा–35** में इस प्रकार दिया हैः–

Thereafter, the appellant as already noticed, filed a transfer petition in this court which was dismissed on 30th August 1993. The transfer petition like the application (supra) cast aspersions on the learned Judge in the discharge of his judicial functions and had the tendency to scandalise the Court. It was an attempt to brow beat the learned Judge of the High Court and cause interference in the conduct of a fair trial. Not only are the aspersions derogatory, scandalous and uncalled for but they also tend to bring the authority and administration of law "into disrespect. The contents of the application seeking stay as also of the transfer petition, bring the court into disrepute and are an affront to the majesty of law and offend the dignity of the Court. The appellant is an Advocate and it is painful that by filing the application and the petition as a party in person, couched in an objectionable language, he permitted himself the

liberty of indulging in an action, which ill behoves him and does little credit to the noble profession to which he belongs. An advocate has no wider protection than a layman when he commits an act which amounts to contempt of court. It is most unbeffitting for an advocate to make imputations against the Judge only because he does not get the expected result, which according to him is the fair and reasonable result available to him. Judges cannot be intimidated to seek favourable orders. Only because a lawyer appears as a party in person, he does not get a licence thereby to commit contempt of the court by intimidating the Judges or scandalising the Courts. He cannot use language, either in the pleadings or during arguments, which is either intemperate or unparliamentary. These safeguards are hot for the protection of any Judge individually but are essential for maintaining the dignity and decorum of the Courts

and for upholding me majesty of law. Judges and courts are not unduly sensitive or touchy to fair and reasonable criticism of their judgments. Fair comments, even if, out-spoken, but made without any malice or attempting to impair the administration of justice and made in good faith in proper language do not attract any punishment for contempt of court. However, when from the. criticism a deliberate, motivated and calculated attempt is discernible to bring down the image of judiciary in the estimation of the public or to impair the administration of justice or tend to bring the administration of justice into disrepute the courts must bister themselves to uphold their dignity and the majesty of law. The appellant, has, undoubtedly committed contempt of the Court by the use of the objectionable and intemperate language. No system of justice can tolerate such unbridled licence on the part of a person, be he a

lawyer, to permit himself the liberty of scandalising a Court by casting unwarranted, uncalled for and unjustified aspersions on the integrity, ability, impartiality of fairness of a Judge in the discharge of his judicial functions as it amounts to an interferece with the due course of administration of justice.

अतः स्पष्ट है कि उक्त न्यायदृष्टांत में भी अपीलार्थी अधिवक्ता द्वारा माननीय उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश के विरूद्ध अपमानजनक एवं कलंकित करने वाली टिप्पणी माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष प्रकरण के स्थानान्तरण हेतु याचिका में की गयी थी। तब माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि अपीलार्थी ने न्यायालय की अवमानना कारित किया है। अधिवक्ता भी अवमानना के आरोप से सुरक्षित नहीं हैं।

इसी प्रकार न्यायदृष्टांत– **मध्यप्रदेश राज्य बनाम रेवाशंकर ए0आई0आर01959 एस0सी0पेज–102** में एक अभियुक्त ने प्रकरण के स्थानान्तरण हेतु आवेदन और एक शपथपत्र दाखिल किया, जो मजिस्ट्रेट के विरूद्ध गम्भीर लांछनों को समाविष्ट करता था। तब माननीय उच्चतम न्यायालय ने धारित किया कि यह अवमानना की कोटि मे आता है। इस न्यायदृष्टांत का पैरा–4 इस प्रकार हैः–

Bearing the aforesaid principles in mind, let us now examine the case under consideration. The High Court

expressed the view that the act of the respondent complained of merely amounted to an offence under s. 228, Indian Penal Code. Nevaskar J. said:

" It appears to me that the application, though it was stated to be an application for transfer, was intended to offend and insult the Magistrate. A man's intention can be judged by the nature of the act he commits. The application directly and in face attributes partiality and corruption to the Magistrate. It was not an application made bona fide to a court having jurisdiction to transfer the case from that Court to some other Court. It was an application thrown in the face of the Magistrate himself. The action is no better than telling the Magistrate in face that he was partial and corrupt. The allegations in the application no doubt are insulting to the Magistrate and he felt them to be so and at the time the application was submitted on 17th December, 1953,

when he was sitting as a Court and dealing with the case of the opponent."

" Thus, since I hold that the opponent intended to offer insult to the Magistrate concerned.

इसी न्यायदृष्टांत में माननीय उच्चतम न्यायालय ने **ब्रम्हप्रकाश शर्मा के न्यायदृष्टांत–ए0आई0आर0 1954 एस0सी0पेज– 10** अवलंब लेते हुये न्यायालय की अवमानना की कार्यवाही के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुये निम्नानुसार अवलोकित किया हैः–

" It would be only repeating what has been said so often by various Judges that the object of contempt proceedings is not to afford protection to Judges personally from imputations to which they may be exposed as individuals; it is intended to be a protection to the public whose interests would be very much affected if by the act or conduct of any party, the authority of the court is lowered and the sense of confidence which people have in the administration of justice by it is weakened ".

It was also pointed out that there were innumerable ways by which attempts could be made to hinder or obstruct the due administration of justice in courts and one type of such interference was found in cases where there was an act which amounted to " scandalising the court itself ": this scandalising might manifest itself in various ways but in substance it was an attack on individual Judges or the court as a whole with or without reference to particular cases, causing unwarranted and defamatory aspersions upon the character and ability of the Judges. Such conduct is punished as contempt for the reason that it tends to create distrust in the popular mind and impair the confidence of the people in the courts which are of prime importance to the litigants in the protection of their rights and liberties.

इसी प्रकार प्रकरण के स्थानान्तरण हेतु प्रस्तुत आवेदन में न्यायाधीश के चरित्र और क्षमता के विरूद्ध आरोप लगाये गये थे। तब माननीय म0प्र0उच्च न्यायालय ने

न्यायदृष्टांत– **म0प्र0राज्य बनाम चंद्रकात सर्राफ 1985 क्रिमिनल लॉ जर्नल पेज 1716 के पैरा–**4 में निम्नानुसार अवलोकित किया हैः–

(4.) THUS, an act which apparently scandalises or tends to scandalise the Court would be 'Criminal contempt'. This scandalisation may manifest itself in many ways. As held by the Supreme Court in State of Madhya Pradesh v. Ravashankar, AIR 1959 SC 102 an attack on individual judge or the Court as a whole with or without any reference to particular cases causing unwarranted and defamatory aspersions upon the; character and ability of the .Judge, would mean's scandalising the Court.

इसी प्रकार प्रकरण के स्थानान्तरण हेतु प्रस्तुत आवेदन में एक न्यायाधीश के विरूद्ध झूठे कलंकित करने वाले निंदनीय आरोप अधिरोपित किये गये थे। तब माननीय पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय ने **कोर्ट ऑन इटस मोसन बनाम अजीत सिंह 1986 क्रिमिनल लॉ जर्नल 590(पंजाब) के पैरा–10** में निम्नानुसार अवलोकित एवं अभिनिर्धारित किया हैः

(10.) NEXT comes the case of Shri N. D. Rahi Advocate, who appeared for Shri Ajit Singh in this transfer application before the District Judge, Kapurthala. An argument was raised on his behalf that he only appeared as a counsel and had not drafted the transfer application. It was also argued that he tried to restrain Shri Ajit Singh from making such contemptuous allegations against a judicial officer. The fact of the matter is that he appeared in the transfer application before the District Judge, Kapurthala, and not Shri R. K. Sachdeva, who was the counsel for Shri Ajit Singh in the Civil suit and continued representing him even after the transfer of the case from the Court of Shri N. K. Bansal. Shri Ajit Singh has stated that the transfer application was drafted by Sarvshri N. D. Rahi and R. K. Sachdeva, Advocates. He had taken this position even in the application dt. 15th Mar. 1984, before the District Judge, Kapurthala. There seems to be

truth in the statement of Shri Ajit Singh. It is admitted by Shri N. D. Rahi that he was not happy with the conduct of Shri N. K. Bansal, who had dismissed his cross objections in a civil case. He got a civil suit, in which he was a party, transferred from the Court of Shri N. K. Bansal. He had even made a complaint in writing against Shri Bansal, which, according to the reference made by Shri N. K. Bansal was rejected. This demonstrates the unhappiness of Shri N. D. Rahi with Shri N. K. Bansal. It appears that it was for this reason that Shri N. D. Rahi was engaged to move the application for transfer of the case of Shri Ajit Singh from the Court of Shri N. K. Bansal, against whom this Advocate had grudge. Normally, a lawyer will not accept the briefwith the grounds already drafted when his own relations with the officer, because of the attitude in his personal case, are not happy. The association of Shri N. D. Rahi with the drafting of the

application has to be inferred. There is nothing on the record to contradict this inference. He may have been engaged at the instance of Shri R. K. Sachdeva because of his unhappy relations with Shri N. K. Bansal. A lawyer cannot disclaim any liability if it ensues from the pleadings or the application which he himself has drafted for his client or was a privy to their drafting or had presented these in case these had been brought to him in a drafted condition.

अतः उक्त न्यायदृष्टांत में अवलोकित एवं अभिनिर्धारित की गयी विधि से यह स्पष्ट है कि यदि कोई पक्षकार किसी प्रकरण के स्थानान्तरण हेतु प्रस्तुत किये गये आवेदन में न्यायालय के न्यायाधीश के विरूद्ध झूठे, कलंककारी आरोप दुर्भावनापूर्वक मात्र इसलिये अधिरोपित करता है, कि प्रकरण तत्काल उनके न्यायालय से अन्य न्यायालय में अन्तरित कर दिया जावे, तो निश्चित रूप से उसका उद्देश्य न्याय को कलंकित करना है या उसकी प्रवृत्ति उसे कलंकित करने की है और वह न्यायालय की कार्यवाही के सुचारू संपादन में प्रतिकूल प्रभाव डालता है या उसमें हस्तक्षेप करता है। अतः स्पष्ट है कि उस पक्षकार के विरूद्ध न्यायालय की अवमानना की कार्यवाही प्रारंभ की जा सकती है।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या उस पक्षकार के अधिवक्ता, जैसा कि प्रकरण में प्रतीत होता है कि परिवादी के अधिवक्ता श्री गणेश शर्मा द्वारा इस न्यायालय में प्रस्तुत आवेदन को स्वयं लिखकर न्यायालय में प्रस्तुत किया है। तब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या अधिवक्ता श्री गणेश शर्मा के विरूद्ध भी न्यायालय अवमानना अधिनियम, 1971 के तहत कार्यवाही प्रारंभ की जा सकती है?

इस प्रश्न का उत्तर माननीय उच्चतम न्यायालय ने न्यायदृष्टांत– **ए0आई0आर0 1955 एस0सी0 पेज–19 में** अधिवक्ता एवं उनके कर्तव्यों को निरूपित करते हुये अवमानना के ही एक प्रकरण में निम्नानुसार अवलोकित किया हैः–

> ".....that counsel who sign applications or pleadings containing matter scandalizing the Court without reasonably satisfying themselves about the prima facie existence of adequate grounds, therefor, with a view to prevent or delay the course of justice, are themselves guilty of contempt of Court....." A lawyer guided by the principles of legal ethics, education, training in law and professional experience is expected to know what a transfer application has to contain. If the basis of the transfer application is the apprehension of the party in the matter

of not getting justice from the particular Court, this apprehension has to be stated and the reason in support has to be mentioned in such an application. The party has to abstain from making scandalous and scurrilous attack on the Judge. Before a lawyer drafts a transfer application, he is to address himself a few question; like; Should he sign the transfer application at all? Are there scandalous allegations which are contumacious? Why should he associate himself with them? Why not advise the party to omit such allegations and confine himself to facts which bear proof? If it is a case of his own prestige and duty, is that clear in law and in fact? Is it a borderline case where two opinions may be possible? Is it not better to avoid even such situations unless professional duty is imperative? Is he serving the interests of the administration of justice by his act or is it merely to satisfy his own ego, bias or personal satisfaction? Is the public benefited by his stand? Unless a lawyer gets a clear answer from his conscience satisfying these questions, which are illustrative and not exhaustive, he should not proceed further in pursuit of those allegations which either he or his client intends to make against a Judge. The ingenious mind of a lawyer can ponder over more possibilities of this

type in a broad sphere to come to the conclusion whether he should take up or proceed with such a case, in which he is asked to appear by his client. Unhappiness of a lawyer with a Judge or lack of cordiality in relations between him and a judicial officer should not be permitted to have an upper hand to influence the mind of a legal attorney in such cases. The Advocates are the officers of the Court. It is one of their functions to maintain the dignity of the Court and law, of which they are an integral part. A lawyer has to maintain a respectful attitude towards the Court, not for the sake of temporary incumbent of the judicial office, but for the maintenance of its freedom. He not only himself is to maintain a courteous and respectful attitude towards the Judge of the Court, but has to insist for a similar conduct on the part of his client. Remuneration alone does not matter nor the cordiality of the relations with the Judge. It is no duty of a counsel to his client to take interest in the pleadings applications, etc., which contain scandalous allegations against a presiding officer of a Court or having an effect of lowering his authority as a Judge without reasonably satisfying himself about the prima facie existence of adequate grounds therefor; on the

contrary,his duty is to advise his client from refraining, from making allegations of such a nature in pleadings or applications.

इसी प्रकार माननीय उच्चतम न्यायालय ने न्यायदृष्टांत–**ए0आईआर0 1972 एस0सी0पेज–989** में भी पक्षकार एवं उसके अधिवक्ता के दायित्व एवं कर्तव्यों को निरूपित करते हुये निम्नानुसार अवलोकित किया हैः–

In Gobind Ram v. State of Maharashtra, AIR 1972 SC 989 , it was held that: "in the garb of a transfer application a person cannot be allowed to commit contempt of Court by making allegations of a serious and scurrilous nature scandalising the Court and imputing improper motives to the Judge trying the case." The litigant and the lawyer are to take care not to over-step the limits of courtesy, propriety and decency. They cannot malign or ridicule the judicial officers in their judicial capacity, as has been done in the case in hand. In the circumstances of the case, we feel that SHRI Ajit Singh started realising his folly only when the learned District Judge disclosed his mind on 5th of December, 1983 regarding the initiating of proceedings for contempt of Court. SHRI N. D. Rahi was still justifying his conduct during the course of arguments before us in spite of his apology. SHRI R. K.

Sachdeva till the last did not feel apologetic and contested his liability. On the peculiar facts of this case we do not feel satisfied if the apology tendered by Sarvshri Ajit Singh and N. D. Rahi, Advocates, really flows from their mind. These days such incidents of insubordination and use of improper language towards the Judges is on the increase. The apology, after doing the mischief, is taken as a cover to avoid punishment. We do not mean to say that because of the increase of such incidents, we are ignoring the apology in this case. We have taken a positive view in the circumstances of this case to ignore the apology. A litigant and a lawyer have to know and understand the stage where they have to stop their criticism of the Judges and also have to be watchful about the languagein which the criticism has been couched. In a case of this type, which is serious, the contemner cannot be allowed to get away by simply feeling sorry by way of apology as the easiest way. In the special circumstances of this case, and the principle laid down in Asharam M. Jain's case, (1983 Cri LJ 1499) (SC) (supra), we do not accept the apology tendered by Sarvshri Ajit Singh and N. D. Rahi, Advocates. For the foregoing reasons, Sarvshri Ajit Singh, N. D. Rahi Advocates

and R. K. Sachdeva Advocate have been proved guilty for committing the contempt of Court under S. 2(c)(i) of the Act. They are convicted for this offence accordingly. Each of them is sentenced to pay Rs. 2,000/- as fine. In case of default in payment of fine, each of them, that is, Sarvshri Ajit Singh, N. D. Rahi and R. K. Sachdeva shall undergo simple imprisonment for fifteen days. The fine shall be deposited within three weeks from today. Orderaccordingly.

इसी प्रकार माननीय झारखण्ड न्यायालय के न्यायदृष्टांत– **कोर्ट ऑन इटस ऑन मोसन एवं अन्य बनाम के0के0झा 'कमल एवं एक अन्य 2007 किमिनल लॉ जर्नल (एन0ओ0सी0) 846 (झारखण्ड)–2007 (3) ए0 आई0 आर0झारखण्ड आर–1** में पांच माननीय न्यायाधिपतियों की पूर्ण पीठ ने यह अभिनिर्धारित किया है किः–

The counsel-contemner has not only filed petition making very serious allegations against the judicial officer without any material whatsoever but also obtained signature from contemner- writ petitioner without getting his consent or instruction for filling such writ petition as against the judicial

offence.<u>It is an improper conduct on part of the lawyer.</u>

अब यह न्यायालय माननीय उच्चतम एवं माननीय उच्चतम न्यायालय के उक्त न्यायदृष्टांतों में अभिनिर्धारित की गयी विधि के अनुसार परिवादी सौरभ पाठक एवं उसके अधिवक्ता श्री गणेश शर्मा द्वारा आपराधिक अपील प्रकरण क्रमांक– 10/2017 को अन्य न्यायालय में अन्तरण करने बाबत प्रस्तुत आवेदन अंतर्गत धारा–408(1) द0प्र0सं0 का अवलोकन कर यह निष्कर्ष देने की ओर अग्रसर हो रहा है कि क्या परिवादी सौरभ पाठक एवं अधिवक्ता श्री गणेश शर्मा को न्यायालय के अवमानना की कार्यवाही प्रारंभ करने की कारण बताओ सूचना जारी की जा सकती है अथवा नहीं की जा सकती है?

जैसा कि पूर्व मे यह उल्लेख किया जा चुका है कि परिवादी सौरभ पाठक के हस्ताक्षर से द0प्र0सं0 की धारा–408(1) का जो आवेदन तैयार किया गया है, वह प्रथम दृष्टि में ही अधिवक्ता श्री गणेश शर्मा की लिखावट में होना प्रतीत होता है।

अतः स्पष्ट है कि उक्त आवेदन के माध्यम से जिला एवं सत्र न्यायालय पर जो Derogatory, scandalous and uncalled आरोप दुर्भावनापूर्ण अधिरोपित किये गये हैं, वह मूलत : अधिवक्ता श्री गणेश शर्मा द्वारा ही अधिरोपित किये गये हैं। इस अपील प्रकरण के परिवादी सौरभ पाठक का जांजगीर अथवा शिवरीनारायण के न्यायालय में दो–चार प्रकरण ही लंबित होगा। अतः स्पष्ट है कि अधिवक्ता श्री गणेश शर्मा ने परिवादी सौरभ पाठक के नाम से आवेदनपत्र मे निम्नानुसार न्यायालय को कलंकित करने वाले आरोप लगाये हैं, जिसकी आवश्यकता स्थानांतरण हेतु

प्रस्तुत किये गये किसी भी आवेदनपत्र में नहीं होती है। अधिवक्ता श्री गणेश शर्मा एवं उनके पक्षकार सौरभ पाठक ने जिला एवं सत्र न्यायालय को जान–बूझकर और सामान्य जन की दृष्टि में कलंकित करने का प्रयास और प्रतिष्ठा को गिराने का प्रयास किया है।

उन्होंने द0प्र0स0.की धारा–408 (1)के निम्नानुसार Derogatory,scandalous and uncalled आरोप अधिरोपित किये हैंः–

(1)– अनावेदिका(अपीलार्थिनी) आवेदक के मित्रों को बोल रही थी, कि उसने माननीय सत्र न्यायालय को मैनेज कर लिया है तथा वह दिनांक 23/05/2017 को बाईज्जत छूट रही है।

(2)– अनावेदिका द्वारा पूरे विश्वास के साथ बोला जा रहा है, जिससे ऐसा लगता है कि आवेदक के साथ न्याय नही हो पायेगा। अनावेदिका ने प्रकरण में लेनदेन की बात भी कही है।

अतः आपराधिक अपील प्रकरण क्रमाक– 10/2017 के अन्तरण हेतु प्रस्तुत आवेदन में परिवादी सौरभ पाठक एवं उसके अधिवक्ता श्री गणेश शर्मा ने न्यायालय पर जान–बूझकर सोच–विचार कर पूर्णतः आधारहीन, जिसके संबंध में कोई भी प्रमाण नहीं है, न केवल आरोप लगाया है, बल्कि उसके समर्थन में शपथपत्र भी प्रस्तुत किया है। उन्होंने उक्त कलंककारी आरोप दुर्भावनापूर्वक न्यायपालिका और न्याय प्रशासन की प्रतिष्ठा को

गिराने के आशय से किया है। वे केवल एक आदेश प्राप्त करने के लिये उन्होंने न केवल न्यायालय को कलंकित किया है, बल्कि उनका आशय न्यायिक कार्यवाही के सम्यक अनुक्रम में प्रतिकूल प्रभाव डालना भी है।

यदि तर्क के लिये यह मान लिया जाए कि अधिवक्ता श्री गणेश शर्मा के पक्षकार सौरभ पाठक को उन्हें आवेदनपत्र में उल्लेखित उक्त तथ्य कि Derogatory, scandalous and uncalled के आरोप के बारे में सूचित किया था, तो प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या अधिवक्ता श्री गणेश शर्मा ने उक्त आरोप के संबंध में स्वयं को संतुष्ट किया था? क्या उन्होंने परिवादी सौरभ पाठक से उक्त अधिरोपित आरोप के अस्तित्व के संबंध में पूछताछ की थी? क्या अधिवक्ता श्री गणेश शर्मा ने न्यायालय के अधिकारी होने की हैसियत से अपने मुवक्किल सौरभ पाठक को यह सलाह दी थी कि वह इस तरह का कलंककारी आरोप न्यायालय पर न लगावें? क्या अधिवक्ता श्री गणेश शर्मा को यह ज्ञात नहीं है कि एक प्रकरण के अन्तरण के आवेदन में क्या–क्या तथ्य होना चाहिये? इसी प्रकार क्या अधिवक्ता श्री गणेश शर्मा ने उक्त आवेदन को अभिलिखित करने के पूर्व स्वयं से इस प्रकार के प्रश्न किया था कि क्या उन्हें आवेदनपत्र मे दस्तखत करना चाहिये? और उन्हें स्वयं को परिवादी से क्यों जोडना चाहिये? क्या उन्होंने परिवादी को यह सलाह भी दी कि वह इस प्रकार के कलंककारी आरोप को अपने आवेदनपत्र से विलोपित करें? लेकिन अधिवक्ता श्री गणेश शर्मा द्वारा अभिलिखित किये जाने वाले आवेदनपत्र से ऐसा कतई प्रतीत नहीं होता है कि उन्होंने उक्त

आवेदन एवं शपथपत्र को ड्रॉफ्ट करने के पहले उक्त प्रश्नों पर विचार किया था?

अतः ऐसी स्थिति में अधिवक्ता श्री गणेश शर्मा के विरूद्ध भी न्यायालय के अवमानना की कार्यवाही किये जाने का पर्याप्त आधार प्रतीत होता है।

वर्तमान में न्यायिक अधिकारियों की प्रतिष्ठा कलंकित करने की प्रवृत्ति बढती जा रही है और यह उपयुक्त समय है, कि उस पर गम्भीर दृष्टिकोण अपनाया जावे। मात्र इसलिये कि एक पक्षकार एवं एक अधिवक्ता को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता है, तो इसलिये उन्हें न्यायालय को कलंकित करने की अनुमति प्राप्त नहीं हो जाती है।

उन्होंने प्रकरण के अन्तरण हेतु प्रस्तुत आवेदन मे जिला एवं सत्र न्यायालय की प्रतिष्ठा को गिराने या कलंकित करने का प्रयास किया है। अतः ऐसी स्थिति में यदि यह न्यायालय विधि की प्रभुता और उसकी महत्ता स्थापित करने के लिये परिवादी सौरभ पाठक एवं उसके अधिवक्ता श्री गणेश शर्मा को न्यायालय की अवमानना की कार्यवाही का कारण बताओ सूचनापत्र जारी नहीं करता है, तो यह विधि के विपरीत होगा।

अतः उक्त विवेचन के अनुसार परिवादी सौरभ पाठक एवं उसके अधिवक्ता श्री गणेश शर्मा के विरूद्ध न्यायालय अवमानना अधिनियम 1971 की धारा–12 सहपठित धारा–15(2) के तहत विविध आपराधिक अवमानना प्रकरण दर्ज किया जावे। उन्हें आपराधिक अपील प्रकरण क्रमांक– 10/2017 में दिये गये पते से इस आशय का कारण बताओ सूचना पुलिस अधीक्षक,

जांजगीर–चांपा के माध्यम से, उनके द्वारा प्रस्तुत आवेदन एवं शपथपत्र सहित प्रेषित कर उन्हें निर्देशित किया जावे कि वे 15 दिन के अंदर कारण बतावें कि क्यों न उनके विरूद्ध अधिनियम की धारा–12 सहपठित धारा–15(2) के तहत न्यायालय की अवमानना की कार्यवाही किये जाने हेतु माननीय उच्च न्यायालय को निवेदित (रिफरेन्स) किया जावे?

परिवादी सौरभ पाठक ने अनावेदिका प्रभा देवी उपाध्याय का उल्लेख आवेदन पत्र की कंडिका–2 में किया है। अतः प्रभा देवी उपाध्याय को भी इस आशय की नोटिस जारी हो कि वह न्यायालय में उपस्थित होकर परिवादी एवं उसके अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत आवेदनपत्र के संबधं में अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत करें कि क्यों न उसके विरूद्ध भी न्यायालय अवमानना की कार्यवाही की जावे? अपीलार्थिनी प्रभा देवी उपाध्याय को दिनांक 27/05/2017 को इस न्यायालय में उपस्थित होने के लिये उक्त अनुसार नोटिस जारी किया जावे?

यह अवमानना का प्रकरण दिनांक 08 जून 2017 को अनावेदकगण की उपस्थिति के पश्चात उनके जवाब के अवलोकन हेतु मेरे समक्ष रखा जावे। इस दौरान अपीलार्थिनी प्रभा देवी उपाध्याय के जवाब एंव स्पष्टीकरण हेतु दिनांक 27/05/2017 को प्रस्तुत किया जावे।

सही/–

(राजेश श्रीवास्तव)
सत्र न्यायाधीश
जांजगीर–चांपा(छ0ग0)